

श्रीमद्भागवतम् स्कन्ध 4 अध्याय 27: कालकन्या का घेरा

21 September 2026

🙏 पाठ से पहले एक निवेदन

श्रीमद्भागवत महापुराण के ये अध्यायवार सार गीता प्रेस भागवत को मुख्य आधार मानकर तैयार किए गए हैं। ये भागवत के अध्ययन में सहायक हैं, मूल ग्रंथ का स्थान नहीं ले सकते।

अध्ययन का मुख्य और अनुशंसित मार्ग गीता प्रेस की भागवत पुस्तक से सीधा पाठ है। यात्रा में, घर से दूर, या जब पुस्तक पास न हो, तब निरंतर अध्ययन, पुनरावृत्ति और समझ के लिए इन सारों का सहारा लिया जा सकता है।



नारद की कथा में, चण्डवेग की शक्तियाँ — वर्षों का अविराम प्रवाह — अन्ततः पुरञ्जन की नौ द्वारों वाली नगरी को घेर लेती हैं, और उसकी थकी हुई रक्षा-पंक्तियाँ अब टिक नहीं सकतीं।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

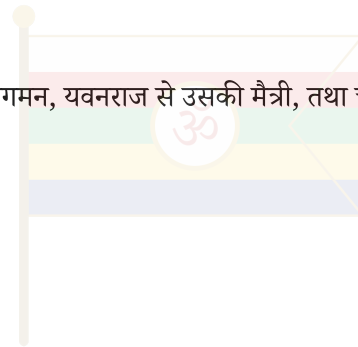
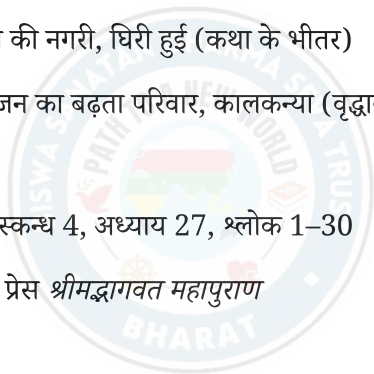
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम में आपका स्वागत है — श्रीमद्भागवत महापुराण की पावन कथाओं और शिक्षाओं की एक भक्तिपूर्ण यात्रा। पिछले अध्याय में, राजा पुरञ्जन, इन्द्रियों से मोहित आत्मा, ने अपने सुखों का पीछा किया और अपनी रानी को मनाया, भोग के बेचैन दौर को जीते हुए। यह सप्तविंश अध्याय कथा को उसके गम्भीर सत्य की ओर मोड़ता है। अपनी रानी से मिल कर, पुरञ्जन अनेक सन्तानों को जन्म देता है

और अपने गृहस्थ में और भी उलझ जाता है — जबकि, अनदेखे, वर्ष सरक जाते हैं। फिर आती है कालकन्या, “काल की पुत्री” — वृद्धावस्था — जो, सर्वत्र तिरस्कृत तथा स्थान से वंचित, यवनराज (भय तथा मृत्यु) तथा उसके भाई प्रज्वार (ज्वर) से मैत्री कर लेती है; और गन्धर्वराज चण्डवेग, दिन-रात का अविराम कूच, पुरञ्जन की नगरी को घेर लेता है। उसका एकमात्र निष्ठावान् रक्षक — प्राण-वायु का सर्प — अकेला अत्यधिक संख्या के विरुद्ध लड़ता है और क्षीण हो जाता है, और नगरी घिस जाती है। यह उस शान्त, सार्वभौमिक घेरे का अध्याय है जो काल प्रत्येक शरीर के विरुद्ध डालता है, और, जब तक दीवारें अभी खड़ी हैं, भगवान् को स्मरण करने का एक आह्वान है।

अध्याय की जानकारी

- शास्त्र: श्रीमद्भागवत महापुराण
- स्कन्ध: 4 (चतुर्थ स्कन्ध)
- अध्याय: 27 (सप्तविंश अध्याय)
- अध्याय का शीर्षक: पुरञ्जन की नगरी पर घेरा, तथा कालकन्या की गाथा
- मुख्य वक्ता: देवर्षि नारद, राजा प्राचीनबर्हि को अपनी कथा की निरन्तरता में (मैत्रेय के विदुर को उपदेश के भीतर)
- मुख्य श्रोता: राजा प्राचीनबर्हि (तथा विदुर)
- मुख्य स्थल: पुरञ्जन की नगरी, घिरी हुई (कथा के भीतर)
- केन्द्रीय विषय: पुरञ्जन का बढ़ता परिवार, कालकन्या (वृद्धावस्था) का आगमन, यवनराज से उसकी मैत्री, तथा चण्डवेग द्वारा नगरी का घेरा
- मुख्य श्लोक-सीमा: स्कन्ध 4, अध्याय 27, श्लोक 1-30
- मूल संस्करण: गीता प्रेस श्रीमद्भागवत महापुराण



पिछले अध्याय का सन्दर्भ

अध्याय 26 ने पुरञ्जन के भोग के बेचैन दौर को दिखाया — उसका आखेट, उसकी रानी का क्रोध, और उसका मनाकर मेल। यह सप्तविंश अध्याय कथा को वर्षों के पार आगे ले जाता है, जैसे आत्मा की उलझन परिवार तथा सम्पत्ति के साथ गहराती है, और स्वयं काल, साकार होकर, अपना धीमा तथा निश्चित घेरा आरम्भ करता है।

बढ़ता गृहस्थ

अपनी रानी से मेल कर, पुरञ्जन ने उसका स्वागत किया — ताज़ा स्नात, सुन्दर मुख वाली, तृप्त तथा शुभ रीतियों से अलंकृत — और उसके साथ अपना जीवन पुनः आरम्भ किया।

स राजा महिषीं राजन् सुस्नातां रुचिराननाम् ।
कृतस्वस्त्ययनां तृप्तामभ्यनन्ददुपागताम् ॥ २ ॥

sa rājā mahiṣīm rājan susnātām rucirānanām kṛta-svastyayanām tṛptām abhyanandad upāgatām

अर्थ: हे राजन्, राजा ने अपनी रानी का स्वागत किया, जो ताज़ा स्नात तथा सुन्दर मुख वाली, तृप्त तथा शुभ रीतियों से अलंकृत होकर उसके पास आई। (स्कन्ध 4, अध्याय 27, श्लोक 2)

उसके आलिंगन में, अपनी एक भुजा उसके कंधों पर डाले, पुरञ्जन एकान्त स्थान में उसके साथ रुका रहा, विनोद के वचनों का आदान-प्रदान करता हुआ — और उसी मोह में उसकी सुधि सर्वथा खो गई। अपनी रानी में इतना लीन था वह कि उसने यह अनुभव करना ही छोड़ दिया कि प्रत्येक दिन तथा रात्रि चुपचाप क्या कर रही थी: बिना किसी प्रतिफल के, उसे मिले हुए जीवन की उसी अवधि को व्यय करना।

तयोपगूढः परिरब्धकन्धरो रहोऽनुमन्त्रैरपकृष्टचेतनः ।

न कालरंहो बुबुधे दुरत्ययं दिवा निशेति प्रमदापरिग्रहः ॥ ३ ॥

tayopagūḍhaḥ parirabdha-kandharo raho 'numantrair apakṛṣṭa-cetanaḥ na kāla-ramho bubudhe duratyayaṁ divā niśeti pramadā-parigrahaḥ

अर्थ: उसके द्वारा आलिंगित, अपनी भुजा उसके कंधों पर, एकान्त में वचनों का आदान-प्रदान करते हुए, पुरञ्जन का मन हर लिया गया — वह अपनी पत्नी में इतना लीन था कि उसने दिन-रात के बीतने में काल के अजेय प्रवाह को कभी नहीं जाना। (स्कन्ध 4, अध्याय 27, श्लोक 3)

लम्बे वर्षों में, पुरञ्जन ने अनेक पुत्र तथा एक सौ दस पुत्रियाँ उत्पन्न कीं, सब सुशील, उदार, तथा प्रत्येक गुण से सम्पन्न, जिन्होंने अपने माता-पिता को यश दिया। उसने उनके विवाह किए, अगणित पौत्र पाए, और इस प्रकार स्वयं को गृहस्थ-बन्धनों के जाल में और भी कसकर बुन लिया, भीतर के मित्र तथा अपने दिनों के बीतने को अधिकाधिक भूलते हुए।

दुहितृदशोत्तरशतं पितृमातृयशस्करीः ।

शीलौदार्यगुणोपेताः पौरञ्जन्यः प्रजापते ॥ ७ ॥

duhitṛ daśottara-śataṁ pitṛ-mātr-yaśaskarīḥ śīlaudārya-guṇopetāḥ paurañjanyāḥ prajā-pate

अर्थ: हे प्रजापति, पुरञ्जन ने एक सौ दस पुत्रियाँ उत्पन्न कीं, जिन्होंने अपने माता-पिता को यश दिया, सुशीलता, उदारता, तथा प्रत्येक गुण से सम्पन्न। (स्कन्ध 4, अध्याय 27, श्लोक 7)



अपनी रानी से मेल कर, पुरञ्जन अनेक पुत्र तथा एक सौ दस पुत्रियाँ उत्पन्न करता है, स्वयं को गृहस्थ-बन्धनों के जाल में और भी कसकर बुनते हुए, जैसे वर्ष सरक जाते हैं
(श्लोक 1-9)।

कथा राजा की ओर मुड़ती है

यहाँ नारद एक अद्भुत कार्य करते हैं: वे अपने श्रोता को स्वयं देखने देते हैं कि यह कथा वस्तुतः किसकी है। राजा प्राचीनबर्हि को सीधे सम्बोधित करते हुए, वे कहते हैं कि पुरञ्जन भी, वैसी ही अनेक कामनाओं से प्रेरित होकर, देवताओं, पितरों, तथा स्थान-रक्षक आत्माओं के लिए विस्तृत यज्ञ करता था — ऐसे यज्ञ जो पशु-वध की माँग के कारण भयावह थे। उसी साँस में नारद राजा का नाम लेते हैं: हे राजन्, यह आपकी ही कथा दुहराई जा रही है। यही कारण है कि सन्त ने अपने श्रोता को सीधे फटकारने के बजाय इतनी लम्बी कथा बुनी — राजा प्राचीनबर्हि उसी समय एक बड़े यज्ञ में लीन थे जिसमें अनेक पशुओं का वध होता था, यह मानते हुए कि ऐसा कर्म ही उनका सर्वोच्च कर्तव्य है। नारद की करुणा यहाँ ठीक इसी रूप में प्रकट होती है — वे राजा की सीधी निन्दा नहीं करते, बल्कि एक कथा के आकार में दर्पण उठाते हैं, इतनी कोमलता से कि राजा नारद के स्पष्ट कहने से पहले ही पुरञ्जन में स्वयं को पहचान सके। शिक्षा यह है कि परिवार, पद, तथा वंश-निरन्तरता के लिए किया गया कर्मकाण्ड — चाहे वह कितना भी शास्त्र-सम्मत प्रतीत हो — स्वयं भक्ति नहीं है, और जब उसमें अन्य प्राणियों के प्रति हिंसा आवश्यक हो, तो वह धर्म भी नहीं रह जाता; वह उसी उलझन का एक और सूत्र मात्र है जिसे यह अध्याय वर्णित कर रहा है।

ईजे च क्रतुभिर्घोरैर्दीक्षितः पशुमारकैः ।

देवान् पितृन् भूतपतीन्नानाकामो यथा भवान् ॥ ११ ॥

īje ca kratubhir ghorair dīkṣitaḥ paśu-mārakaiḥ devān pitr̥n bhūta-patīn nānā-kāmo yathā bhavān

अर्थ: हे राजन्, आपके ही समान अनेक कामनाओं से प्रेरित होकर, पुरञ्जन भी ऐसे भीषण यज्ञों के लिए दीक्षित हुआ जिनमें पशु-वध आवश्यक था, और इस प्रकार उसने देवताओं, पितरों, तथा भूत-पतियों की उपासना की। (स्कन्ध 4, अध्याय 27, श्लोक 11)

कालकन्या का आगमन

तब नारद ने कालकन्या की कथा कही — “काल की पुत्री,” जो वृद्धावस्था है। पति की खोज में, वह जहाँ भी गई तिरस्कृत हुई, क्योंकि कोई उसे स्वेच्छा से नहीं अपनाता। उसने एक बार स्वयं नारद के पास भी पहुँची थी; और जब उन्होंने उसकी याचना अस्वीकार की, वह क्रुद्ध हुई और उन पर एक शाप डाला — कि वे कभी किसी एक स्थान पर देर तक न रह सकें।

मयि संरभ्य विपुलमदाच्छापं सुदुःसहम् ।

स्थातुमर्हसि नैकत्र मद्याच्चाविमुखो मुने ॥ २२ ॥

*mayi samrabhya vipula- madāc chāpaṁ suduḥsaham sthātum arhasi naikatra mad-yācñā-
vimukho mune*

अर्थ: (कालकन्या ने क्रुद्ध होकर कहा:) हे मुने, क्योंकि तुमने मेरी याचना से मुँह मोड़ा है, तुम किसी एक स्थान पर देर तक नहीं रह सकोगे। (स्कन्ध 4, अध्याय 27, श्लोक 22)



कालकन्या, काल की पुत्री — वृद्धावस्था — पति की खोज में जहाँ भी तिरस्कृत, स्वयं देवर्षि नारद के पास भी पहुँचती है; जब वे अस्वीकार करते हैं, वह उन्हें शाप देती है कि वे किसी एक स्थान पर देर तक न रहेंगे (श्लोक 19-24)।

वृद्धावस्था, भय, तथा ज्वर की मैत्री

सर्वत्र अस्वीकृत, कालकन्या ने अन्ततः अपना स्थान पाया। भयंकर यवनराज — जो स्वयं भय है, मृत्यु का अग्रदूत — ने उसे स्वीकार किया, और उसे पत्नी के रूप में नहीं बल्कि बहन के रूप में अपनाया, अपने ही भाई प्रज्वार को प्रस्तुत करते हुए, जो ज्वर है। साथ में, उसने घोषणा की, कालकन्या तथा प्रज्वार और अपने भयंकर, अदृश्य सैनिकों के साथ, वह इस संसार में अलक्षित रूप से विचरेगा, प्रत्येक प्राणी को अपने ही गुप्त काल में घिसते हुए।

प्रज्वारोऽयं मम भ्राता त्वं च मे भगिनी भव ।

चराम्युभाभ्यां लोकेऽस्मिन्नव्यक्तो भीमसैनिकः ॥ ३० ॥

prajvāro 'yaṁ mama bhrātā tvaṁ ca me bhaginī bhava carāmy ubhābhyāṁ loke 'sminn avyakto bhīma-sainikaḥ

अर्थ: (यवनराज ने कहा:) यह मेरा भाई प्रज्वार है; तू मेरी बहन बन; तुम दोनों तथा अपने भयंकर सैनिकों के साथ, मैं इस संसार में अलक्षित रूप से विचरूँगा। (स्कन्ध 4, अध्याय 27, श्लोक 30)



भयंकर यवनराज — भय, मृत्यु का अग्रदूत — कालकन्या को अपनी बहन के रूप में स्वीकार करता है और उसे अपने भाई प्रज्वार, ज्वर, से जोड़ता है, ताकि वे संसार में अलक्षित रूप से विचरें, प्रत्येक प्राणी को घिसते हुए (श्लोक 25-30)।

नगरी का घेरा

और इस प्रकार, पहले अनदेखे, घेरा आरम्भ हुआ। गन्धर्वराज चण्डवेग — वर्षों का अविराम प्रवाह, अपने तीन सौ साठ योद्धाओं, बिना विश्राम चक्कर लगाते दिन-रातों, सहित — पुरज्जन की नौ द्वारों वाली नगरी पर बढ़ आया। नगरी का एकमात्र निष्ठावान् रक्षक, प्राण-वायु का पाँच फणों वाला सर्प, वीरता से लड़ा; किन्तु अकेला इतनों के विरुद्ध, तथा लम्बे आक्रमण से थका, वह क्षीण से क्षीणतर होता गया। अपने अत्यन्त घनिष्ठ साथी को क्षीण होता देख, पुरज्जन, अपने समस्त राज्य, नगरी, तथा स्वजनों सहित, गहरी चिन्ता तथा विषाद से ग्रस्त हो गया।

क्षीयमाणे स्वसम्बन्धे एकस्मिन् बहुभिर्युधा ।

चिन्तां परां जगामार्तः सराष्ट्रपुरबान्धवः ॥ १७ ॥

kṣīyamāṇe sva-sambandhe ekasmin bahubhir yudhā cintāṁ parāṁ jagāmārtaḥ sa-rāṣṭra-pura-bāndhavaḥ

अर्थ: जैसे उसका एकमात्र घनिष्ठ साथी, अकेला इतनों के विरुद्ध लड़ता, क्षीण हुआ, पुरञ्जन, अपने राज्य, नगरी, तथा स्वजनों सहित, गहरी चिन्ता तथा विषाद में गिर पड़ा। (स्कन्ध 4, अध्याय 27, श्लोक 17)



नगरी का एकमात्र निष्ठावान् रक्षक, प्राण-वायु का सर्प, अकेला काल की अगणित शक्तियों के विरुद्ध लड़ता है और क्षीण हो जाता है, और पुरञ्जन, अपने समस्त स्वजनों सहित, गहरी चिन्ता से ग्रस्त हो जाता है (श्लोक 10-18)।

इस प्रकार सप्तविंश अध्याय शरीर की नगरी के साथ समाप्त होता है, काल, वृद्धावस्था, भय, तथा ज्वर के धीमे, अजेय घेरे से घिसी हुई — आत्मा, अब भी अपने गृहस्थ में लीन, अन्ततः उससे आमने-सामने लाई गई जिसे वह इतने समय से भूल गई थी। अगला अध्याय बताएगा कि यह घेरा कैसे समाप्त होता है, और कैसे, अज्ञात मित्र की कृपा से, मुक्ति का मार्ग अन्ततः प्रकट होता है।

इस अध्याय की प्रमुख शिक्षाएँ

1. उलझन उसी के साथ गहराती है जिससे हम प्रेम करते हैं। पुरञ्जन के पुत्र, पुत्रियाँ, तथा पौत्र उसे संसार से और भी कसकर बाँधते हैं। वही बन्धन जो हमें प्रसन्न करते हैं हमें उलझाते भी हैं; संसार का प्रेम उतना बढ़ता है जितना हमारे पास प्रेम करने को होता है (श्लोक 1-9)।
2. यह कथा वस्तुतः उसी की है जो इसे सुन रहा है। “आपके ही समान” कहकर नारद यह प्रकट करते हैं कि पुरञ्जन स्वयं राजा प्राचीनबर्हि ही हैं — और परिवार तथा प्रतिष्ठा के लिए किए गए विस्तृत यज्ञ, जब उनमें पशु-वध आवश्यक हो, भक्ति नहीं बल्कि उसी उलझन का एक और सूत्र हैं (श्लोक 11)।
3. काल सबके लिए आता है, बिन बुलाए तथा अनचाहा। कालकन्या, वृद्धावस्था, सबसे तिरस्कृत है, फिर भी वह सदा के लिए टाली नहीं जा सकती। जिसे कोई अपना नहीं चाहता वह अन्त में हम सबको अपना लेती है (श्लोक 19-24)।
4. वृद्धावस्था, भय, तथा ज्वर साथ तथा अदृश्य चलते हैं। कालकन्या, यवनराज, तथा प्रज्वार की मैत्री यह चित्रित करती है कि कैसे आयु, मृत्यु का भय, तथा रोग हममें चुपचाप, “अलक्षित रूप से” कार्य करते हैं, हमारे ध्यान देने से बहुत पहले (श्लोक 30)।

5. शरीर की रक्षा-पंक्तियाँ सदा नहीं टिक सकतीं। प्राण-वायु का निष्ठावान् सर्प अकेला लड़ता है और निरन्तर क्षीण होता है। हम अपने स्वास्थ्य तथा बल की चाहे जैसे रक्षा करें, वर्षों का लम्बा घेरा अन्त में पीछे नहीं धकेला जा सकता (श्लोक 17)।

6. घेरा केवल शोक नहीं, एक आह्वान है। नारद के इस गम्भीर चित्र का सम्पूर्ण अभिप्राय आत्मा को तब तक जगाना है जब तक समय है। काल का आगमन हमें, अन्ततः, उस एक मित्र की ओर मोड़ने को है जो विफल नहीं होता (श्लोक 25-30)।

एक भक्तिपूर्ण चिन्तन

यही वह अध्याय है जहाँ कथा एक विक्षिप्त राजा की कहानी मात्र रहना बन्द करती है और, स्पष्ट रूप से, हममें से प्रत्येक का चित्र बन जाती है। हम अपने गृहस्थ बनाते हैं, अपनी सन्तानों तथा उनकी सन्तानों में आनन्दित होते हैं, अपने स्वास्थ्य की रक्षा करते तथा अपनी सम्पत्ति एकत्र करते हैं — और इस सबके बीच, बिल्कुल अनदेखे, वर्ष उस नगरी पर बढ़ते जा रहे हैं जिसे हम अपना जीवन कहते हैं। भागवत इसे इतने सजीव रूप से साकार करता है कि हम मुँह नहीं मोड़ सकते: वृद्धावस्था एक तिरस्कृत स्त्री के रूप में जिसे कोई नहीं चाहता किन्तु कोई अन्ततः अस्वीकार नहीं कर सकता; भय तथा ज्वर उसके सहयोगी के रूप में, हममें “अलक्षित रूप से” चलते हुए; स्वयं दिन-रात बिना विश्राम दीवारों को घेरती एक सेना के रूप में। यह एक गम्भीर चित्र है, और इसका यही अभिप्राय है। किन्तु इसका प्रयोजन हमें निराशा में भयभीत करना नहीं; यह हमें दीवारों के गिरने से पहले जगाना है। पुरञ्जन की त्रासदी यह नहीं कि काल उसके लिए आता है — काल सबके लिए आता है — बल्कि यह कि वह उसे अब भी सोता हुआ पाता है, अब भी अपने गृहस्थ में लीन, अब भी भीतर के उस मित्र को भूला हुआ जो उसे निर्भय बना सकता था। इस कठोर अध्याय में छिपी करुणा बस यह है कि हमें घेरा अभी दिखाया जा रहा है, जब तक दीवारें अभी खड़ी हैं। और जो प्रतिक्रिया यह आमन्त्रित करता है वह घबराहट नहीं बल्कि स्मरण है: आज मुड़ना, जब तक समय है, उस एक साथी की ओर जिसे कोई घेरा छू नहीं सकता, ताकि जब हमारी अपनी नगरी अन्ततः घिस जाए, तो हम दीवारों से चिपके नहीं, बल्कि उनमें विश्राम करते पाए जाएँ।

एक दैनिक भक्ति-अभ्यास

आज, काल के बीतने को अपने को भगवान् की ओर मोड़ने दें। एक शान्त क्षण लेकर, बिना भय, उस स्पष्ट सत्य को स्वीकार करें जो कथा कहती है: कि आपके दिन गिने हुए हैं और वर्ष बढ़ रहे हैं, जैसे वे हम सबके लिए बढ़ते हैं। उस विचार को दूर धकेलने के बजाय, उसे इन शब्दों के साथ भगवान् को अर्पित करें — “ॐ नमो भगवते वासुदेवाय”, काल के घेरे के स्मरण को अभी, जब तक आप कर सकते हैं, उन्हें स्मरण करने का आह्वान बनने देते हुए। फिर आज एक ऐसा कार्य करें जिसे आप चाहते कि आपने किया होता यदि आप जानते कि दीवारें आपके सोचने से अधिक निकट थीं — प्रेम का एक वचन कहा गया, एक अन्याय क्षमा किया गया, एक प्रार्थना अर्पित की गई, भगवान् की ओर एक पग बढ़ाया गया। काल के विचार को भय के बजाय भक्ति जगाने देने में, आप घेरे का उत्तर वैसे देते हैं जैसे नारद ने उसका दिया जाना चाहा: मुड़कर, जब तक अभी समय है, भीतर के उस मित्र की ओर जो विफल नहीं होता।

उपसंहार

चतुर्थ स्कन्ध का सप्तविंश अध्याय पुरञ्जन की कथा को उसके सबसे गम्भीर मोड़ तक ले जाता है। अपनी रानी के आलिंगन में डूबा हुआ, पुरञ्जन समय के बीतने की सुधि पूर्णतः खो देता है, और वर्ष-दर-वर्ष उसके घर में पुत्र, पुत्रियाँ, तथा पौत्र जुड़ते जाते हैं — इसी बीच नारद यह भी चुपचाप प्रकट कर देते हैं कि यह कोई मात्र कथा नहीं: सुनने वाला राजा स्वयं, जो अपने ही पशु-वध वाले यज्ञों में लीन है, पुरञ्जन ही है। किन्तु आगे जो होता है उसे कुछ भी नहीं रोक पाता। कालकन्या, काल की अवांछित पुत्री, सर्वत्र ठुकराई जाती है, यहाँ तक कि यवनराज —

मृत्यु का अपना दूत — उसे अपने भाई प्रज्वार, ज्वर, के साथ बहन के रूप में अपना लेता है, और संसार में अलक्षित विचरने की प्रतिज्ञा करता है। तब गन्धर्वराज चण्डवेग — दिन-रात का अथक क्रम — पुरञ्जन की नौ-द्वारों वाली नगरी को घेर लेता है, और उसका एकमात्र प्रहरी, प्राण-वायु का सर्प, अकेला लड़ते-लड़ते क्षीण होता जाता है, यहाँ तक कि सम्पूर्ण परिवार भय से ग्रस्त हो जाता है। इस लम्बे, धैर्यपूर्ण घेरे को उजागर करते हुए, यह प्रवचन हमें निराशा की ओर नहीं धकेलता; यह हमें, जब तक हमारी अपनी दीवारें अभी खड़ी हैं, इस कथा में स्वयं को पहचानने तथा उस मित्र की ओर मुड़ने को कहता है जो विफल नहीं होता।

श्रीमद्भागवतम् का दिव्य ज्ञान हमारे हृदयों में शुद्ध भक्ति को जागृत करे।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

जय श्री माधव।

सन्दर्भ तथा आभार

- मूल संस्करण: गीता प्रेस, श्रीमद्भागवत महापुराण (अंग्रेज़ी, पूर्ण), चतुर्थ स्कन्ध, सप्तविंश अध्याय।
- श्रृंखला: श्रीमद्भागवतम् विज़डम • बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट।
- पण्डित डॉ. श्री काशीनाथ मिश्र के आध्यात्मिक मार्गदर्शन तथा अनुशंसा के अनुसार प्रस्तुत।

यह लेखक के अपने शब्दों में एक मौलिक, निष्ठावान् पुनर्कथन है, जिसमें संक्षिप्त उद्धृत श्लोक देवनागरी तथा लिप्यन्तरण में दिखाए गए हैं और उनके अर्थ सारांश के रूप में दिए गए हैं। यह किसी एक प्रकाशक के निरन्तर अनुवाद या टीका का पुनरुत्पादन नहीं है। किसी भी प्रकाशक द्वारा किसी सम्बद्धता या समर्थन का दावा नहीं किया गया है।

॥ हरि ॐ तत्सत् ॥

जय श्री माधव

ऑनलाइन पढ़ें: kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-canto-4-chapter-27-the-siege-of-puranjanas-city-and-kalakanya-hi.html

श्रीमद्भागवतम् विज़डम • कल्कि अवतार इंटरनेशनल • बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट